क्या बोटिक दिगम्बर हैं ?

दलसुख मालवणिया

सर्वप्रथम यहाँ 'दिगम्बर' शब्द के प्रयोग से क्या अभिप्रेत है ? यह बताना आवश्यक है। 'दिगम्बर' शब्द का सामान्य अर्थ 'नग्न' होता है। यह सामान्य अर्थ यहाँ अभिप्रेत नहीं, अपितु विशेष अर्थ 'दिगम्बर-सम्प्रदाय' अभिप्रेत है। जिसकी मुख्य मान्यता है कि मुनि को वस्त्र का, पात्र का सर्वथा त्याग कर नग्न रहना चाहिए और इसी मान्यता का फलित है कि क्योंकि आर्या वस्त्र-रहित हो नहीं सकती, अतएव स्त्री की मुक्ति नहीं होती। तदुपरान्त केवली के कवलाहार का निषेध आदि अन्य मान्यताएँ भी दिगम्बर-सम्प्रदाय में आई हैं। प्रस्तुत प्रसङ्ग में इतना समझ लेना पर्याप्त है।

तो अब परीक्षा की जाय कि जिस बोटिक-सम्प्रदाय या निह्नव का श्वेताम्बर के प्राचीन ग्रन्थ आवश्यकसूत्र की टीका आदि में उल्लेख है, क्या वह दिगम्बर है ?

आवश्यक के मूल भाष्य में गाथा १४५ से १४८ तक में सर्वप्रथम बोटिक का उल्लेख आया है, वह इस प्रकार है—

छव्वाससयाइं नवुत्तराइं तइया सिद्धिगयस्स वीरस्स।
तो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा॥
रहवीरपुरं नयरं दीवगमुज्जाण मज्जकण्हे य।
सिवभूइस्सुवहिंमि य पुच्छा थेराण कहणा य॥
ऊहाए पण्णत्तं बोडियसिवभूइउत्तराहि इमं।
मिच्छादंसणमिणमो रहवीरपुरे समुप्पण्णं॥
बोडियसिवभूईओ बोडियलिंगस्स होइ उप्पत्ती।
कोडिण्ण-कोट्टवीरा परंपराफासमुप्पण्णा[1]॥

आवश्यक-निर्युक्ति के मत से तो वर्धमान के तीर्थ में सात ही निह्नव थे, ऐसा निर्युक्ति गाथा ९९८ और उक्त भाष्य गाथाओं के बाद आने वाली निर्युक्ति गाथा ९८४ से भी स्पष्ट होता है। अतएव मूलभाष्यकार ने बोटिक मत का निर्देश सर्वप्रथम किया है, यह स्पष्ट हो जाता है। आचार्य हरिभद्र आवश्यकटीका में उपर्युक्त गाथा १४६-१४७ को संग्रह गाथा के रूप में निर्दिष्ट करते हैं। १४५वीं गाथा को मुद्रित प्रति में भाष्य गाथा माना गया है। पुनः हरिभद्र ने गाथा १४७ एवं १४८ को मूल भाष्य की गाथा बताई है। तात्पर्य यह हुआ कि गाथा १४७ को उन्होंने संग्रह गाथा कहा और मूलभाष्य को भी गाथा बताया। इससे मालूम होता है कि उनके मत में संग्रह और मूल भाष्य एक ही होगा। आवश्यकचूर्णि में इन गाथाओं की व्याख्या करते समय चूर्णिकार ने कोई स्पष्टीकरण नहीं किया है कि ये गाथाएँ निर्युक्ति की हैं या अन्यत्र से आयी हैं। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि ये

१. आवश्यकटीका—हरिभद्रकृत, पृ० ३२३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथाएँ मूल निर्युक्ति की नहीं हो सकतीं, क्योंकि निर्युक्ति में बार-बार सात निह्नवों का ही उल्लेख किया गया है, जिसमें बोटिक का समावेश नहीं है। आवश्यकनिर्युक्ति एवं आवश्यक मूलभाष्य के इस अन्तर का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न आचार्य हरिभद्र ने अपनी टीका में किया है। विशेषावश्यक में भी ये गाथाएँ इसी रूप में मिलती हैं, किन्तु इस मत के विवरण में, जो विशेषावश्यक में विस्तार करने वाली गाथाएँ हैं, उनका कोई निर्देश आवश्यकचूर्णि में नहीं है। अतएव यह प्रतीत होता है कि मूलभाष्य विशेषावश्यकभाष्य से पृथक् था। सम्भव है कि विशेषावश्यक में जो 'विशेष' शब्द है, वह मूलभाष्य से पृथक्करण के लिए प्रयुक्त है।

प्रस्तुत भाष्य-गाथाओं में बोटिक के मन्तव्य को दिट्ठी (दृष्टि) और मिच्छादंसण (मिथ्या दर्शन) कहा है और उसकी उत्पत्ति को भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद ६०९ वर्ष व्यतीत होने पर हुई, यह भी स्पष्ट किया है। यह मिथ्यादर्शन आर्य कण्ह (कृष्ण) के शिष्य शिवभूति ने शुरू किया है और उनके दो शिष्य हुए—कोडिण्ण (कौण्डिन्य) और कोट्टवीर, उसके बाद परम्परा चली।

मूलगाथाओं में इसे दिट्ठी या मिच्छादंसण कहा है, किन्तु टीकाकारों ने इसे निह्नव कहा है तथा अन्य निह्नवों से इस निह्नव का जो भेद है, उसे बताने का प्रयत्न किया है। अन्य निह्नवों से इसका अन्तर स्पष्ट करने के पूर्व बोटिक शब्द के अर्थ को देखा जाय "बोटिकश्चासौ चारित्रविकलतया मुण्डमात्रत्वेन[1]"—अर्थात् वे नग्न थे, इतना तो स्पष्ट होता है। 'चारित्र विकल' जो कहा गया है, वह साम्प्रदायिक अभिनिवेश है। आवश्यकचूर्णि में सात निह्नवों को 'देसविसंवादी' कहा है, जबकि बोटिक को 'पमूततरविसंवादी' कहा है[2]। किन्तु साम्प्रदायिक व्यामोह बढ़ने के साथ बोटिक के लिए कोट्याचार्य ने विशेषावश्यक की गाथा ३०५२ की टीका में उसे 'सर्वविसंवादी' कह दिया है। आचार्य हरिभद्र अपनी आवश्यक वृत्ति में बोटिक को 'प्रभूतविसंवादी' कहते हैं[3], जो चूर्णि का अनुसरण है। विशेषावश्यक टीकाकार हेमचन्द्र ने कोट्याचार्य का अनुसरण करके बोटिक को 'सर्वविसंवादी' कहा है[4]। इतने से सन्तुष्ट न होकर उन्होंने उसे 'सर्वापलाप' करने वाला भी कह दिया है[5]। निशीथ भाष्य में सभी निह्नवों के विषय में कहा है कि ये 'वुग्गइ वक्केन' हैं—गाथा ५६९६ और निशीथचूर्णि में 'वुग्गह' का अर्थ दिया है—"वुग्गहो त्ति कलहो त्ति वा भंडणं ति वा विवादो त्ति वा एगट्ठं"[6]। उत्तराध्ययन की टीका में शाक्याचार्य ने चूर्णि का अनुसरण करके बोटिक को 'बहुतरविसंवादी' कहा है[7]।

पूर्वोक्त भाष्य-गाथाओं में तो इतनी ही सूचना है कि शिवभूति को उपधि के विषय में प्रश्न था। इस प्रश्न का विवरण भाष्य में उपलब्ध नहीं। इस विवरण के लिए हमारे समक्ष सर्वप्रथम जिनभद्र

---

१. उत्तराध्ययन की शाक्याचार्य टीका, पृ० १८१।
२. आवश्यक चूर्णि, पृ० १४५ (भाग १)।
३. आवश्यक वृत्ति, पृ० ३२३।
४. विशेषावश्यक, गाथा २५५०।
५. वही, गाथा २३०३।
६. निशीथचूर्णि, गाथा ५५१५।
७. उत्तराध्ययन टीका, पृ० १७९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का विशेषावश्यक भाष्य है[१]। उसमें आवश्यकचूर्णिगत शिवभूति का कोई परिचय नहीं है, केवल उनकी उपधि के विषय में गुरु के साथ हुई चर्चा का विवरण है। इससे इतना स्पष्ट होता है कि कथा के तन्तु की सम्पूर्ति आवश्यक चूर्णि में की गई है[२]। हमें यहाँ कथा से कोई मतलब नहीं है, किन्तु गुरु के साथ उनकी जो चर्चा हुई, उसी से है। निम्न बातें आवश्यकचूर्णि से फलित होती हैं, जो शिवभूति को मान्य थीं—

१. जिनकल्प का विच्छेद जो माना गया था, उसे शिवभूति अस्वीकार करते हैं।

२. उपधि-परिग्रह का त्याग और अचेलता का स्वीकार, अर्थात् वस्त्र आदि किसी प्रकार की उपधि को वे परिग्रह मानते थे। अतएव वे नग्न रहते थे।

३. उनकी बहन उत्तरा ने भी प्रथम तो वस्त्र का त्याग किया, किन्तु गणिका द्वारा दिया गया वस्त्र वह रखे, क्योंकि वह देव का दिया हुआ है—ऐसा मानकर ऐसी अनुमति शिवभूति ने दी। अतएव उनके संघ में आर्याएँ—साध्वियाँ वस्त्र रख सकती थीं--ऐसा फलित होता है।

४. साध्वी जब वस्त्र रख सकती थी तो स्त्री-निर्वाण के निषेध की चर्चा को कोई अवकाश ही नहीं था।

विशेषावश्यक भाष्य में शिवभूति की गुरु के साथ जो चर्चा हुई[३], उसका विस्तृत विवरण है। उस विवरण के आधार पर निम्न बातें शिवभूति के विषय में कही जा सकती हैं—

१. समर्थ के लिए जिनकल्प का विच्छेद नहीं मानना चाहिए।

२. जिनेन्द्र अचेल थे, अतएव मुनि को भी उनका अनुसरण करना चाहिए।

३. मुनि को अचेल परीषह जीतना जरूरी है, अतएव नग्न रहना आवश्यक है। वस्त्रादि परिग्रह कषाय के हेतु हैं, अतएव परिग्रह का त्याग आवश्यक है। निर्ग्रन्थ का ग्रन्थहीन होना जरूरी है।

४. आगम को वह मानता था। आचारांङ्ग के सूत्र को 'उभयसम्मत' कहा है[४]। फिर भी उसकी बात को माना नहीं है[५]।

५. पात्र की आवश्यकता भी अस्वीकृत है[६]।

६. अचेल का अर्थ अल्पचेल भी इसे मान्य नहीं है।

७. अचेलक होते हुए भी तीर्थंकर दीक्षा के समय वस्त्रधारी होते थे, क्योंकि यह दिखाना था कि साधु वस्त्रधारी भी हो सकते थे—यह तर्क भी शिवभूति को मान्य नहीं था।

८. साध्वी को एक वस्त्र की छूट थी।

विशेषावश्यक की विस्तृत चर्चा में विवाद के विषय केवल वस्त्र और पात्र हैं। इसमें स्त्री-मुक्ति निषेध की चर्चा नहीं है। दिगम्बर-सम्प्रदाय में वस्त्र-पात्र के अलावा स्त्री-मुक्ति का भी निषेध है। अतएव जिनभद्र तक के समय में बोटिक को दिगम्बर-सम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता।

---

१. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा ३०३२-९२।
२. आवश्यकचूर्णि, पृ० ४२७।
३. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा ३०३६।
४. आचाराङ्ग, सूत्र १३४।
५. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा ३०५४।
६. वही, गाथा ३०६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ एक स्पष्टीकरण आवश्यक है। मुद्रित आवश्यकचूर्णि में जितने अंश में बोटिक की चर्चा है, उसके मार्जिन में 'दिगम्बरोत्पत्ति' छपा है। किन्तु वह सम्पादक का भ्रम है। क्योंकि चूर्णि में भी बोटिक की चर्चा में कहीं भी स्त्री-मुक्ति की चर्चा को स्थान मिला नहीं है। अतएव बोटिक और दिगम्बर में भेद करना जरूरी है, इसीलिए बोटिक की उत्पत्ति का जो समय है, वह दिगम्बरोत्पत्ति या श्वेताम्बर-दिगम्बर-पृथक्करण का नहीं हो सकता।

यहाँ यह भी बता देना जरूरी है कि विशेषावश्यक भाष्य की गाथा २६०९ की टीका में बोटिक-चर्चा का हेमचन्द्र ने उपसङ्हार करते हुए 'स्त्री-मुक्ति' की चर्चा के लिए उत्तराध्ययन के छत्तीसवें अध्ययन की टीका को देख लेने को कहा है। वह भी उनके मत में बोटिक और दिगम्बर-सम्प्रदाय को एक मानने के भ्रम के कारण है। जब मूल में स्त्री-निर्वाण-चर्चा की कोई सूचना ही नहीं है, तब उस चर्चा को यहाँ आना उचित नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि आगे चलकर यह भ्रम श्वेताम्बर आचार्यों में फैला है कि दिगम्बर = नग्न होने के कारण बोटिक भी दिगम्बर-सम्प्रदाय है। यहाँ यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि बोटिक की चर्चा में जिनभद्र ने कहीं भी दिगम्बर शब्द का प्रयोग नहीं किया है। वस्त्र के लिए चेल और नग्न के लिए अचेल शब्द का प्रयोग है। बाह्य लिङ्ग के विषय में और बोटिक के विषय में आचार्य अभयदेव के मत का यहाँ निर्देश जरूरी है—

स्थानाङ्ग मूल में पाठ है—

"चत्तारि पुरिस जाया पन्नत्ता तं जहा—रूवं नाम एगे जहति, नो धम्मं; धम्मं नाम एगे जहति, न रूवं, एगे रूवं वि जहति, धम्मं वि; एगे नो रूवं जहति, नो धम्मं[1]"।

उसकी टीका में अभयदेव ने लिखा है—"रूपं साधुनेपथ्यं जहाति त्यजति कारणवशात्, न धर्मं चारित्रलक्षणं, बोटिकमध्यस्थितमुनिवत्; अन्यस्तु धर्मं न रूपम्, निह्नववत्[2]"।

इससे इतना तो स्पष्ट होता है कि अभयदेव के मतानुसार बोटिकों के बीच कुछ मुनि ऐसे थे, जिनका बाह्य लिङ्ग तो श्वेताम्बरों के अनुकूल नहीं था, किन्तु मुनि-भाव यथार्थ था। निह्नव और श्वेताम्बरों में भेद यह है कि निह्नवों ने बाह्य वेश तो तत्काल में प्रचलित ही रखा था, किन्तु मान्यता में भेद किया था।

किन्तु आचार्य जिनभद्र ने, जो अभयदेव से पूर्वकालीन हैं, लिखा है—"भिन्नमय-लिंग-चरिया मिच्छदिट्ठित्ति बोडियाऽभिमया"।[3] इसकी टीका में हेमचन्द्र ने लिखा है—"मतं च लिङ्गं च भिक्षाग्रहणादिविषया चर्या च मतलिङ्गचर्याः, भिन्ना मतलिङ्गचर्या येषां ते तथाभूताः सन्तो बोटिका मिथ्यादृष्टयोऽभिमताः।"[4]

यहाँ सामान्य रूप से बोटिकों के विषय में कहा है कि उनका मत, लिङ्ग और आचरण भिन्न है और ये मिथ्यादृष्टि हैं। जबकि अभयदेव ने उदारता से विचार किया है कि वेश कैसा

---

१. स्थानाङ्ग, सूत्र ३२०, पृ० २३९।
२. वही, टीका, पृ० २४१।
३. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा २६२०।
४. वही, गाथा २६२०, पृ० १०४४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी हो, बाह्याचार कैसा भी हो, यथार्थ रूप से कोई मुनि हो सकता है।

आवश्यक की टीका में हरिभद्र ने बोटिक सहित सभी निह्नवों को मिथ्यादृष्टि कहा है—"निह्नवो मिथ्यादृष्टिः", साथ ही अन्य किसी का मत देकर कहा है कि 'अन्ये तु द्रव्यलिङ्गतोपि भिन्ना बोटिकाख्या इति।"[१]

सारांश यह है कि बोटिक बाह्य वेश की अपेक्षा से भी भिन्न हैं अर्थात् वे नग्न रहते थे। अतएव मतभेद के अलावा बाह्यवेश से भी वे भिन्न हुए। विशेषावश्यक में लिङ्ग-भेद की बात तो आचार्य ने कही, किन्तु समग्र चर्चा से इतना ही स्पष्ट होता है कि बोटिकों ने वस्त्र और पात्र का त्याग किया। वेशान्तर में रजोहरण के स्थान में पिच्छी का ग्रहण किया या नहीं—इस विषय की कोई चर्चा नहीं मिलती। यदि पिच्छी का ग्रहण किया होता, तो आचार्य जिनभद्र अपनी चर्चा में उसे भी परिग्रह क्यों न माना जाय—यह प्रश्न अवश्य उठाते। ऐसा न करके उन्होंने यदि वस्त्र परिग्रह है, तो शरीर को भी परिग्रह क्यों नहीं मानते—इत्यादि जो दलीलें दी हैं, वह पिच्छी की चर्चा के बाद ही देते। इससे पता चलता है कि पिच्छी का उपयोग प्रारम्भ में बोटिकों ने किया नहीं था। रजोहरण का प्रयोग वे करते थे या नहीं यह स्पष्ट नहीं होता, किन्तु यदि करते होते तो वह परिग्रह क्यों नहीं— ऐसी चर्चा भी जिनभद्र अवश्य करते।

आचाराङ्ग-चूर्णि में एक वाक्य बोटिक की उपधि के विषय में आता है, उसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता। किन्तु तद्गत कुच्चग—कड से तात्पर्य कूचा (पिच्छ) और कट अर्थात् सादडी (चटाई) से हो, तो आश्चर्य नहीं—पाठ है—"जहा बोडिएण धम्म कुच्चग-कड-सागरादि सेच्छया गहिता।"[२]

बोटिक पात्र नहीं रखते थे, अतएव जहाँ भिक्षार्थ जाते थे, वहीं भोजन कर लेते थे—"असणादी वा (३) तत्थेव भुंजति जहा बोडिय[३]" और उनकी भोजन-विधि क्या थी, उसे भी बताया है कि वे "पाणिपुडभोइणो" अर्थात् हस्त-पुट-भोजी थे—"तेण जे इमे सरीरमत्तपरिग्गहा पाणिपुडभोइणो ते णाम अपरिग्गहा, तं जहा उड्डंडगबोडियासारक्खमादि।"[४] यहाँ उड्डंड का अर्थ है—तापस और सारक्ख का अर्थ है—आजीवक।[५]

आचार्य शीलाङ्क ने बोटिकों के उपकरणों की चर्चा करते हुए उनके उपकरणों की तालिका दी है—"कुण्डिका-तट्टिका-लम्बणिका-अश्ववालधिवालादि।"[६] शुरू में शायद इतने उपकरण बोटिक रखते नहीं होंगे, किन्तु शीलाङ्क के समय तक उपकरणों की वृद्धि हुई होगी। अश्ववालादि से रजोहरण का बोध होता है।

शीलाङ्क ने सरजस्क = आजीवक और बोटिक—दोनों को जो दिगम्बर कहा है, वह सम्प्रदाय का सूचक नहीं है, किन्तु नग्नता का—"यद्येवं अल्पेनापि परिग्रहेण परिग्रहवत्वं अतः पाणिपुटभोजिनो दिगम्बराः सरजस्क-बोटिकादियोऽपरिग्रहाः स्युः, तेषां तदभावात्।"[७]

---

१. आवश्यक टीका, पृ० ३११।
२. आचाराङ्ग चूर्णि, पृ० ८२।
३. वही, पृ० ३३६।
४. वही, पृ० १६९।
५. श्रमण भगवान् महावीर : कल्याणविजयकृत, पृ० २८०।
६. आचाराङ्ग, शीलाङ्क टीका, पृ० १३५।
७. वही, पृ० २०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलाङ्क ने अन्यत्र पिच्छक का उल्लेख किया भी है—"बोटिकानामपि पिच्छकादि-परिग्रहात् ।"[1] बोटिकों के उपकरण की चर्चा, जो विशेषावश्यक भाष्य के बाद हुई है, वह सम्भवतः दिगम्बर और बोटिक का भेद न करके हुई है। यह भी सम्भव है कि कालक्रम से बोटिकों का ही रूपान्तर दिगम्बर-सम्प्रदाय में हो गया हो।

इस समग्र चर्चा से इतना तो स्पष्ट होता ही है कि बोटिक मूलतः दिगम्बर नहीं थे, क्योंकि स्त्री-मुक्ति के निषेध की चर्चा हमें सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्द में मिलती है। यद्यपि उनका समय विवादास्पद है, फिर भी मेरा अपना यह निश्चित मत है कि आचार्य कुन्दकुन्द आचार्य उमास्वाति के पूर्व नहीं हुए हैं। इसको सिद्ध करने का प्रयत्न मैंने अपनी न्यायावतार वृत्ति की प्रस्तावना में दोनों आचार्यों के जैन दर्शन सम्बन्धी मन्तव्यों की तुलना करके किया है। इस समग्र चर्चा से दो फलित निकलते हैं—प्रथम तो यह कि श्वेताम्बर ग्रन्थों में बोटिक नाम से जिस सम्प्रदाय का उल्लेख हुआ है, वह दिगम्बर-सम्प्रदाय से भिन्न है और जिसे अन्यत्र यापनीय के नाम से पहचाना जाता है। दूसरे दिगम्बर-सम्प्रदाय, जो स्त्री-मुक्ति का निषेध करता है, वह या तो बोटिकों का ही परवर्ती विकास है, या फिर उससे प्रारम्भिक श्वेताम्बर आचार्य परिचित नहीं थे। क्योंकि प्राचीन निर्युक्तियों एवं भाष्यों से ऐसी मान्यता की उपस्थिति के न तो कोई संकेत ही मिलते हैं और न उसके खण्डन का ही कोई प्रयास देखा जाता है।

८, ओपेरा सोसायटी, अहमदाबाद–३८०००७

---

१. आचाराङ्ग, शीलाङ्क टीका, पृ० २०७।

सन्दर्भ-सूची

१. आवश्यक चूर्णि : प्रका० ऋषभदेवजी केसरीमलजी, रतलाम, भाग–१, १९२४; भाग–२।
२. विशेषावश्यक भाष्य : भाग–२, ला० द० ग्रन्थमाला, १९६४।
३. श्वेताम्बर-दिगम्बर : मुनिदर्शनविजय, १९४३।
४. निशीथसूत्र : भाग–४, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, १९६०।
५. आवश्यक सूत्र : हरिभद्र टीका, आगमोदय समिति, १९१५।
६. विशेषावश्यक भाष्य : हेमचन्द्र टीका, यशोविजय ग्रन्थमाला, बनारस, वीर सं० २४३९।
७. विशेषावश्यक भाष्य : कोट्याचार्य टीका, भाग–२, ऋषभदेवजी केसरीमलजी, रतलाम, १९३७।
८. उत्तराध्ययन : शाक्याचार्य टीका, देवचन्द्रलाल भाई, १९१६।
९. स्थानाङ्गसूत्र : अभयदेव टीका, आगमोदय समिति, १९१५।
१०. आचाराङ्ग चूर्णि : ऋषभदेव केसरीमलजी, १९४१।
११. आचाराङ्ग : शीलाङ्क टीका, आगमोदय समिति।
१२. श्रमण भगवान् महावीर : कल्याणविजयजी, श्री० क० वि० शास्त्रसंग्रह समिति, जालोर, वि० सं० १९९८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org